।। अथ श्रीसाईसच्चरित ।। अध्याय २४ वा ।।

।। श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीसरस्वत्यै नमः ।। श्रीगुरुभ्यो नमः ।। श्रीकुलदेवतायै नमः ।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः ।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथाय नमः ।। गताध्यायांतीं दिधलें वचन। साईनाथगुरु करूणघन। थट्टामस्करींतही देती शिकवण। कैशी ती कथन करितों मी।।१।। कथन करितों हा अहंकार। असावें गुरुपदीं निरहंकार। तेणेंचि कथेसी पाझर। फुटतो सादर सेवावा।।२।। नित्य निर्मल निष्कल्मष। साधु सज्जन महापुरुष। स्वच्छ निरभ्र जैसें आकाश। शुद्ध निर्दोष तैसे ते।।३।। महाराज साईंचें भजन। स्वर्थ आणि परमार्थसाधन। स्वस्वरूपीं अनुसंधान। समाधान अंतरीं।।४।। जया मनीं स्वहित साधणें। कथेसी आदर धरावा तेणें। सहज परमानंद भोगणें। सार्थक साधणें जीवाचें।।५।। श्रवणें लाभेल निजविश्रांति। निरसेल भवभयाची भ्रांति। होईल परमानंदप्राप्ति। श्रोतियां सद्‌गति रोकडी।।६।। अंतरसाक्ष साईसमर्थ। पूर्ण जाणे भक्तभावार्थ। संपादूनि निजकर्तव्यार्थ। वचननिर्मुक्त होईल।।७।। बुद्धिप्रेरक साईसमर्थ । तेच वदविती निजवचनार्थ। कथीन यथामति तद्‌भावार्थ। स्वार्थपरमार्थसाधक।।८।। नव्हे अंध, ना रातांधळे। डोळे असोन जन आंधळे। केवळ या देहबुद्धीचिया बळें। निजहित न कळे तयांतें।।९।। देह तरी हा आहे ऐसा। नाहीं क्षणाचाही भरवंसा। पसरितों मी पदरपसा। क्षणैक रसा चाखाया।।१०।। थट्टाविनोदीं सकळां प्रीति। बाबांची तों अलौकिक रीति। थट्टेंतूनही सारचि ठसविती। हितकारक ती सकळांना।।११।। जन थट्टेच्या नादीं न भरती। परी बाबांच्या थट्टेसी लांचावती। कधीं कीं आपुले वांटयास ये ती। वाटचि पाहती आवडींने।।१२।। थट्टा कोणास बहुदा नावडे। परी ही थट्टा परम आवडे। वरी अभिनयाची जोड जंव जोडे। कार्यचि रोकडें तैं साधे।।१३।। सहज अभिनव अप्रयास। सस्मितवदन नयनविलास। इंहीं जंव थट्टेंत भरे रस। तियेची सुरसता अवर्ण्य।।१४।। आतां कथितों एक अनुभव। कथा अल्पबोध अभिनव। थट्टेपोटीं परमार्थोद्‌भव। शब्दगौरव परिसा तें।।१५।। आठवड्याचा प्रतिरविवार। शिरडीस भरतो मोठा बाजार। पाल देऊनि उघड्यावर। उदीम व्यापार चालतो।।१६।। तेथेंच मग रस्त्यावर। भाजीपाल्याचे पडती ढिगार। तेली तांबोळी यांचे संभार। चव्हाटट्यावर बैसती।।१७।। ऐशा त्या एका रविवारीं। बाबांचेपाशी दोन प्रहरीं। करितां पादसंवाहन करीं। नवलपरी वर्तली।।१८।। तो दोनप्रहरचा दरबार। नित्यचि भरे बहु चिकार। त्यांत बाजार आणि रविवार। लोक अनिवार लोटले।।१९।। उजू बाबांचे सन्मुख बैसून। वांकवूनियां खालीं मान। करीत होतों मी पादसंवाहन। नामस्मरणसमवेत।।२०।। माधवरावजी वामभार्गी। वामनराव दक्षिणांगी। श्रीमंत बुट्टी तये जागीं। सेवेलागीं बसलेले।।२१।। काकाही होते तेथेंच बैसले। तितक्यांत माधवराव हंसले। कां अण्णासाहेब हे तेथें कसले। दाणे हे डसले दिसताती।।२२।। ऐसें म्हणूनि कोटाची अस्तनी। बोटानें स्पर्शतां माधवरावांनीं। कोटाचिया वळियांमधूनि। दाणे वरूनि आढळले।।२३।। तें काय म्हणून पाहूं जातां। डावें कोपर लांब करितां। फुटाणे निसले खालीं गठगठतां। मंडळी टिपतां देखिली।।२४।। टिपून टिपून गोळा केले। पांच पंचविस फुटाणे भरले। तेथेंच थट्टेस कारण उद्‌भवलें। ऐसें घडलें कैसेंनी।।२५।। तर्कावरी चालले तर्क। जो तो विचारात झाला गर्क। फुटाण्यांचा कोटाशी संपर्क। विस्मय समस्तां जाहला।।२६।। खाकी कोटाच्या वळ्या त्या किती। त्यांत हे दाणे कैसे सामावती। आलेच कोठूनि कैशा स्थितीं। न कळे निश्चितीं कवणा हें।।२७।। करीत असतां पादसंवाहन। लायूनि नामीं अनुसंधान। मध्येंच हें फुटाण्यांचें आख्यान। कैसेनि उत्पन्न जाहलें।।२८।। इतुका काळ सेवेंत जातां। कधींच कां ना पडले हे तत्त्वतां। हा वेळ राहिले हीच आश्चर्यता। सकळांच्या

चित्ता वाटली।।२९।। कोठून फुटाणे तेथें आले। वडियांवरी कैसे स्थिरावले। जे ते आश्चर्य करून राहिले। मग बाबा वदले तें परिसा।।३०।। शिक्षणाच्या विलक्षण पद्धती। अनेकांच्या अनेक असती। बाबा जयांची जैसी गति। शिक्षण देती त्यां तैसें।।३१।। पद्धती विचत्रि महाराजांची। सरणी स्मरणीय बहु मजेची। अन्यत्र तैसी देखिल्या - ऐकिल्याची। नाहीं प्रचीति मजप्रती।।३२।। म्हणती ''याला वाईट खोडी। एकेकटें खाण्याची गोडी। आज बाजाराची साधूनि घडी। फुटाणे रगडीत हा आला।।३३।। एकेकटें खाणें बरें नव्हे। ठावी मला त्याची सवे। हेच फुटाणे याचे पुरावे। उगा नवलावे कशास''।।३४।। मग मी म्हणे कोणा न देतां। ठावें न खाणें माझिया चित्ता। तेथें या खोडीची कैंची वार्ता। अंगी चिकटतां चिकटेना।।३५।। बाबा मी आज हा वेळभर। पाहिला नाहीं शिरडीचा बाजार। गेलोंच तरी फुटाणे घेणार। मग खाणार हें पुढेंच।।३६।। असेल त्यासही असो गोडी। माझी तों नाहीं ऐसी खोडी। दुजिया न देतां आधीं थोडी। वस्तु मी तोंडीं घालींना।।३७।। मग बाबांची पहा युक्ति। कैसी जटविती निजपदीं भक्ति। ऐकोन ही माझी स्पष्टोक्ति। काय वदती लक्ष द्या।।३८।। ''सन्निध असेल तयास देसी। नसल्यास तूं तरी काय करिसी। मी तरी काय करावें त्यासी। आठवतोसी काय मज।।३९।। मी नाहीं का तुझ्याजवळ। देतोस काय मजला कवळ''। ऐसें फुटाण्याचें हें मिष केवळ। तत्त्व निश्चळ ठसविलें।।४०।। देवता-प्राण-अग्नि-वंचन। वैश्वदेवांतीं अतिथिवर्जन। करूनि करिती जे पिंडपोषण। महद्दूषण त्या अन्ना।।४१।। वाटेल हें लहान तत्त्व। व्यवहारीं लावितां अति महत्व। रसास्वादन तों उपलक्षणत्व। पंचविषयत्व या पोंटी।।४२।। विषयीं जयासी हव्यास। परमार्थ न धरी तयाची आस। तयांवरी जो घालील कास। तयाचा दास परमार्थ।।४३।। ''यदा पंचावतिष्टंते''। या मंत्रें जें श्रुति वदते। तेंच बाबा या थट्टेच्या निमित्तें। दृढ करिते चाहले।।४४।। शब्दस्पर्शरूपगंध। या चतुष्ट्याचाही हाच संबंध। किती बोधप्रद हा प्रबंध। कथानुबंध बाबांचा।।४५।। मनबुद्ध्यादि इंद्रियगण। करूं आदरितां विषयसेवन। करावें आधीं माझें स्मरण। तैं मज समर्पण अंशांशें।।४६।। इंद्रियें विषयांवीण राहती। हें तों न घडे कल्पांतीं। ते विषय जरी गुरुपदीं अर्पिती। सहजीं आसक्ति राहील।।४७।। काम तरी मद्विषयींच कामावें। कोप आल्या मजवरीच कोपावें। अभिमान दुराग्रह समर्पावे। भक्तीं वहावे मत्पदीं।।४८।। काम क्रोध अभिमान। वृत्ति जंव उठती कडकडून। मी एक लक्ष्य लक्षून। मजवरी निक्षून सोडाव्या।।४९।। क्रमें क्रमें येणेंपरी। वृत्तिनिकृंतन करील हरी। मग या विखारत्रयाच्या लहरी। तो परीहरील गोविंद।।५०।। किंबहुना हें विकारजात। मत्स्वरुपींच लय पावत। किंवा मद्रूपचि तें स्वयें होत। विश्रामत मत्पदीं।।५१।। ऐसें होतां अभ्यसन। वृत्ति स्वयेंच होती क्षीण। कालांतरें समूलनिर्मूलन। वृत्तिशून्य मन होई।।५२।। गुरु असे निरंतर सन्निधी। ऐसी वाढतां दृढ बुद्धी। तयास या ऐसिया विधी। विषय न बाधी कदाही।।५३।। जेथ हा सद्भाव ठसला। तेथेंचि भवबंध उकलला। विषयोविषयीं गुरु प्रकटला। विषयचि नटला गुरुरुपें।।५४।। यत्किंचित विषयसेवनीं। बाबा आहेत संनिधानीं। सेव्यासेव्यता विचार मनीं। सकृद्दर्शनीं उठेल।।५५।। असेव्य विषय सहजचि सुटे। व्यसनी भक्ताचें व्यसन तुटे। असेव्यार्थी मनही विटे। वळवितां नेहटें हें वळण।।५६।। विषयनियमनीं होई सादर। वेद त्या नियमाचा आकार। विषय सेवी मग नियमानुसार। स्वेच्छाचार वर्तेना।।५७।। ऐसी संवयी लागतां मना। क्षीण होती विषयकल्पना। आवडी उपजे गुरुभजना। शुद्धज्ञाना अंकुरे ये।।५८।। शुद्ध ज्ञान लागतां वाढी। देहबुद्धीची तुटे बेडी। ते बुद्धी दे अहंब्रह्मीं बुडी। सुखनिरवडी मग लाहे।।५९।। जरी हा देह क्षणभंगुर देख। तरी हा परमपुरुषार्थसाधक। जो प्रत्यक्ष मोक्षाहून अधिक। कीं भक्तियोगप्रदायक हा।।६०।। चारी पुरुषार्थांच्या वरी। या पंचम पुरुषार्थाची पायरी। कांहीं न पावे या योगाची सरी। अलौकिक परी भक्तीची।।६१।। गुरुसेवेनें जो होई कृतार्थ। तया आकळे हें वर्म यथार्थ। भक्तिज्ञानवैराग्य-स्वार्थ। तोचि परमार्थ पावेल।।६२।। गुरु आणि देव यांत। भेद पाही जयाचें चित्त। तेणें

अखिल भागवतांत। नाहींच भगवंत देखिला।।६३।। वाचिलें अखिल रामायण। ठावी न रामाची सीता कोण। सांडूनियां द्वैतदर्शन। गुरु-देव अभिन्न जाणावे।।६४।। घडतां गुरुसेवा निर्मळ। होईल विषयवासना निर्मूळ। चित्त होईल शूद्ध सोज्ज्वळ। स्वरूप उज्ज्वळ प्रकटेल।।६५।। असो इच्छाशक्ति होतां प्रबळ। फुटाणे बाबांचे हातचा मळ। याहून विलक्षण करितां खेळ। त्यां काळवेळ लागेना।।६६।। केवळ पोटाचिया ओढी। ऐंद्रजाली लौकिक गारोडी। फिरवून भारली हाडाची कांडी। पदार्थ काढी माने तो।।६७।। साईनाथ अलौकिक गारोडी। काय तयांच्या खेळाची प्रौढी। इच्छा होतां न भरतां चिपडी। फुटाणे काढील अगणित।।६८।। परी या कथेचें सार काय। तेथेंच आपण घालूं ठाय। पांचां पोटीं कोणताही विषय। बाबांशिवाय सेवूं नये।।६९।। मनास देतां ही शिकवण। वेळोवेळीं होईल आठवण। देतां घेतां साईचरण। अनुसंधान राहील।।७०।। हे शुद्धब्रह्म सगुणमूर्ति। नयनासमोर राहील निश्चितीं। उपजेल भक्ति-मुक्ति-विरक्ति। परमप्राप्ती लाधेल।।७१।। नयनीं देखतां सुंदर ध्यान। हरेल संसार भूक--तहान। हरपेल ऐहिक सुखाचें भान। मन समाधान पावेल।।७२।। ओंवी नाठवे आठवूं जातां। परी ती आठवें जात्यावर बसतां। तैसी ही चणकलीला कथितां। सुदामकथा आठवली।।७३।। एकदां राम कृष्ण सुदामा। सेवीत असतां गुर्वाश्रमा। लांकडें आणावयाचे कामा। कृष्ण-बलरामां पाठविलें।।७४।। गुरुपत्नीचिया नियोगें । कृष्ण-बलराम अरण्यामार्गें। निघाले मात्र तों तयांच्या मागें। सुदामा संगें पाठविला।।७५।। तयापाशीं दिधले चणे। क्षुधा लागतां फिरतां अरण्यें। तिघांहीं हे भक्षण करणें। गुरुपत्नीने आज्ञापिलें।।७६।। पुढें रानांत कृष्ण भेटतां। ''दादा तहान लागली'' म्हणतां। फुटाण्यांची वार्ता न करितां। परिसा वदता झाला तें।।७७।। अनशेपोटीं पाणी न प्यावें। म्हणे सुदामा क्षणैक विसांवें। परी न वदे हे चणे खावे। कृष्ण विसांवें मांडीवर।।७८।। पाहून लागला कृष्णाचा डोळा।। सुदामा चणे खाऊं लागला। दादा कायहो खातां हा कसला। आवाज वदला कृष्ण तदा।।७९।। काय रे खाया आहे येथें। थंडीने द्विजपंक्ती थुडथुडते। विष्णुसहस्त्रनामही मुखातें। स्पष्टोच्चरितां येईना।।८०।। ऐकून हें सुदाम्याचें उत्तर। सर्वसाक्षी कृष्ण परात्पर। म्हणे मलाही स्वप्न खरोखर। पडलें बरोबर तैसेंच।।८१।। एकाची वस्तु दुजा खातां। काय रे खातोस ऐसा वदतां। खाऊं काय माती तो म्हणतां। वाणी तथास्तुता प्रकटली।।८२।। अरे हें स्वप्नचि बरें दादा। आपण मजवीण खाल कां कदा। खातां काय हा प्रश्नही तदा। स्वप्नाच्या नादांत पुसियेला।।८३।। पूर्वाश्रमीं सूदामजीला। असती ठावी कृष्णलीला। तरी हा नसता प्रमाद घडला। नसता भोगिला परिणाम।।८४।। तो तरी काय साधारण। अठरा विश्वें दारिद्रय घन। तरी एकेकटे खाती ते जन। त्यांनी हें स्मरण ठेवावें।।८५।। कृष्ण परमात्मा जयाचा सखा। ऐसा हा भक्त सुदाम्यारारिखा। नीतीस यत्किंचित होतां पारखा। पावला धोका संसारी।।८६।। तोच स्वस्त्रीकष्टार्जित। प्रेमें मूठभर पोहे अर्पित। कृष्ण होऊनि प्रसन्नचित्त। ऐश्वर्यतृप्त करी तया।।८७।। असो आतां आणिक एक। वार्ता कथितों बोधप्रदायक। आधीं आनंद-विनोदसुख। बोधप्रमुख जी अंतीं।।८८।। कोणास आवडे परमार्थबोध। कोणास तर्कयुक्तिवाद। कोणास आवडे थट्टा विनोद। आनंदीआनंद सकळांते।।८९।। हीही होती एक थट्टा। बाई बुवा पटेल हट्टा। साईदरबारीं मजला तंटा। तुटला न बट्टा लागतां।।९०।। हीही कथा परमसुरस। श्रोतयां आनंददायी बहुवस। भक्त भांडतां अरस परस। हास्यरस पिकेल।।९१।। भक्त दामोदर घनश्याम। बाबरे जयांचे उपनाम। अण्णा चिचंणीकर टोपण नाम। प्रेम निःसीम बाबांचे।।९२।। स्वभाव मोठा खरमरीत। कोणाचीही न धरीत मुर्वत। उघड बोलणें विहिताविवित। हिताहित पाहती ना।।९३।। वृत्ति अण्णांची जितकी कडक। तितकीच सालस आणि सात्त्विक। माथें जैसी मरलेली बंदूक। लावितां रंजूक भडका घे।।९४।। सकळ कामीं तडकाफडकी। उधारीची वार्ता न ठाऊकी। न धरी कुणाची भीडभाड कीं। रोखठोकी व्यवहार।।९५।। वेळीं धरवेल विस्तव हातीं। अण्णा तयाहूनि प्रखर अति। परी ही निष्कपट स्वभावजाती। तेणेंच प्रीती बाबांची।।९७।। बाबा पाहती

तटस्थपणें। नकळत लावीत भक्तांचीं भांडणें। संपतां रागावणें वा रुसणें। उभयां समजावणें अखेर।।९८।। कोणी बाबांची कूस दाबीत। कोणी पादसंवाहन करीत। कोणी पाठपोट चेपीत। सेवा करीत ये रीतीं।।९।। बाबा बालब्रह्मचारी। ऊर्ध्व रेते शुद्धाचारी। करूं देत सेवा चाकरी। नरनारी समस्तां।।१००।। अण्णा बाहेर ओणवे राहती। हळू हळू वामहस्त दाबिती। तों उजवे बाजूची परिस्थिती। स्वस्थ चित्तीं ऐकावी।।१०१।। तिकडे होती एक बाई। अनन्यभक्त बाबांचे पायीं। बाबा जीस म्हणत आई। मावशीबाई जनलोक।।१०२।। मावशीबाई म्हणत सर्व। वेणूबाई मूळ नांव। कौजलगी हें आडनांव। अनुपम भाव साईपदीं।।१०३।। अण्णांची उलटली पन्नशी। तोंडांत नव्हती बत्तिशी। पोक्त वयस्करही ती मावशी। तंटा उभयांशीं उद्‌भवला।।१०४।। अण्णा सहकुटुंब करीत सेवा। आई होती विगतधवा। दाबितां बाबांचे पोट कुसवा। नावरे निःश्वास तियेस।।१०५।। श्रीसाईसेवेसी सबळ। मावशीबाई मनाची निर्मळ। उभय हस्तीं घालूनि पीळ। मांडिली मळणी पोटाची।।१०६।। पाठीमागून निरणावेरी। धरूनि बाबांस दोहीं करीं। दाबदाबूनि घुसळण करी। जैसी डेरी ताकाची।।१०७।। साईमानीं लावूनि लय। मावशीबाई दाभी निर्भय। बाबाही न करी हायहूय। वाटे निरामय जणूं तयां।।१०८।। दाबण्याची विलक्षण परी। पोटपाठ सपाट करी। प्रेमचि तें परी ते अवसरीं। दया अंतरीं उपजवी।।१०९।। साईंचे हें निष्कपट प्रेम। देऊनि घेती सेवा अनुत्तम। कीं तें निजस्मरण अविश्रम। घडो हो क्षेम भक्तांस।।११०।। आपुली तपश्चर्या ती किती। जेणें लाधावी ही संतसंगती। परी साईच दीनवत्सल निश्चितीं। उपेक्षिती ना भक्तांतें।।१११।। काय त्या हेलकाव्यांची कुसरी। बाबा हालत खालींवरी। तीही हाले तैशिया परी। नवलपरी ही सेवेची।।११२।। अण्णा ओणवे परी स्थिर। बाई आपुल्या सेवेंत चूर। तेणें होई मुख खालवर। मग काय प्रकार वर्तला।।११३।। साईसेवेचिया सुखा। पिळितां पोट खातां झोका। संनिध अण्णांचिया मुखा। आलें अवलोका मुख तिचें।।११४।। पाहूनिया ऐसी संधी। मावशीबाई मोठी विनोदी। म्हणे कायहो अण्णा नादी। मुका आधीं मागे मज।।११५।। पिकल्या केसांची लाज नाहीं। घेतोस माझा मुका पाहीं। ऐसें वदतां मावशीबाई। अण्णा बाही सरसावी।।११६।। म्हणे मी इतुका थेरडा। मी काय मूर्ख अगदींच वेडा। तूंच तोंड लावुनी तोंडा। सजलीस भांडाया मजपासीं।।११७।। पाहूनियां मातली कळ। बाबांस तया दोघांची कळकळ। कराया दोघांसी शीतळ। युक्ति प्रबळ योजिती।।११८।। प्रेमें म्हणती ''अरे अण्णा। उगाच रे कां मांडिला दणाणा। अनुचित काय तेंच समजेना। मुका घेतांना आईचा''।।११९।। परिसोनि मनीं दोन्ही विरमली। विनोदवाणी ठायींच जिरली। सप्रेम हास्या उकळी फुटली। थट्टा ती रूचली अवघिया।।१२०।। पाहूं जातां कथा थोडी। मार्मिक श्रोते घेतील गोडी। ठाय कैसा घालावा हे परवडी। कथेंत रोकडी दिसेल।।१२१।। मायलेकांत जैसी प्रीती। प्रेंमबुद्धि उभयतांत असती। तेथें ही कळ उद्‌भवली नसती। क्रोधवृत्ति उठतीच ना।।१२२।। चाबुकें हाणितां हांसें उसळे। फुलाच्या मारें रडें कोसळे। वृत्तीचे तरंग भावनापळें। कोणास न कळे अनुभव हा।।१२३।। नवल बाबांची सहज युक्ति। बोल बोलती समयोचिती। जेणें श्रोते अंतरी निवती। बोधही घेती तात्काळ।।१२४।। ऐसेंच एकदां पोट रगडतां। उपजली बाबांच्या परमभक्ता। कळकळ दया आणि चिन्ता। तिची अतिरेकता पाहुनी।।१२५।। म्हणती बाई दया करा। ही का अंग दाबण्याची तऱ्हा। अंतरी थोडी कींव धरा। तुटतील शिरा बाबांच्या।।१२६।। कानीं पडतां इतुकी अक्षरें। बाबा स्थानावरूनि सत्वरें। घेऊनि आपुला सटका निजकरें। भूमि प्रहारें ताडिली।।१२७।। चढली वृत्ति दुर्धर क्षोभा। समोर कोण राहील उभा। नेत्र खदिरांगार-प्रभा। फिरती सभोंवार जैं।।१२८।। अंधारीं मार्जाराचीं बुबुळें। तेवीं चमकती दिवसां डोळे। वाटे नयनींचिया ज्वाळें। आतांच जाळितील सृष्टी।।१२९।। सटक्याचें टोंक दों हातीं धरलें। पोटाचिया खळगींत खोचलें। दुजें खांबांत समोर रोविलें। घट्ट कवळिलें खांबाला।।१३०।। सटका लांब सव्वाहात। शिरला वाटे सबंध पोटांत। आतां स्फोट होऊनि प्राणांत। ओढवेल

क्षणांत तैं वाटे।।१३१।। खांब अढळ तो काय हाले। बाबा जवळी जवळी भिडले। खांबास पोटांशी घट्ट आवळिलें। पाणी पडविलें देखत्यांचे।।१३२।। आतां होईल पोटाचा स्फोट। जो तो तोंडांत घाली बोट। बाप हा काय प्रसंग दुर्घट। ओढवलें संकट दुर्धर।।१३३।। ऐसी लोक करिती चिंता। काय करावें या आकांता। एवढें संकट त्या मावशीकरितां। भक्ताधीनता हें ब्रीद।।१३४।। कधीं कोणीही सेवा करितां। मध्येंच दर्शवितां अनुचितता। किंवा सेवेकऱ्यास कोणी बोलतां। बाबांचे चित्ता खपेना।।१३५।। भक्ता प्रेमळा आलें जीवा। मावशीबाईस इशारा द्यावा। साईबाबांस आराम व्हावा। परिणाम यावा कां ऐसा।।१३६।। असो देवास आली करूणा। शांतता उद्भवली साईंचे मना। सोडूनियां ते भयप्रद कल्पना। येऊनि आसना बैसती।।१३७।। भक्त प्रेमळ जरी निधडा। बाबांचा स्वभाव पाहूनि करडा। लाविला देथूनि कानास खडा। घेतला धडा पुढारा।।१३८।। तेव्हांपासूनि निश्चय केला । जावें न कोणाच्याही वाटेला। येईल जैसें ज्याचे मनाला। तैसें तयाला करूं द्यावें।।१३९।। समर्थ स्वयें सामर्थ्यवंत। निग्रहानुग्रहज्ञानवंत। गुणावगुण सेवकजनांत। आपण किमर्थ पाहावे।।१४०।। एकाची सेवा साईंस सुखकर। दुजयाची ती असती प्रखर। हे तरी निजबुद्धीचे विकार। खरा प्रकार आकळेना।।१४१।। असो आतां हा थट्टाविनोद। घेणारा घेईल यांतील बोध। साईकथा-रसामोद। भक्त मकरंद सेवोत।।१४२।। हेमाड साईपदीं लीन। पुढील अध्याय याहूनि गहन। भक्त दामोदराची इच्छा पूर्ण। साई दयाघन करितील।।१४३।। तोही मोठा चमत्कार। दामोदर संसारत्रस्त फार। तयास पाचारूनि आपुले समोर। घालविला घोर तयाचा।।१४४।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। विनोदविलसितं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः संपूर्णः।।

।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।